P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-9, ISSUE-1 August -2020
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

राजकमल चौधरी का काव्यात्मक संघर्ष : एक अध्ययन

Rajkamal Chaudhary's Poetic Conflict: A Study

Paper Submission: 13/08/2020, Date of Acceptance: 26/08/2020, Date of Publication: 27/08/2020

आलोक कुमार पाण्डेय
पूर्व शोधार्थी,
हिन्दी विभाग,
जयप्रकाश विश्वविद्यालय,
छपरा, बिहार, भारत

सारांश

राजकमल चौधरी काव्यात्मक संघर्ष के कवि हैं, जिन्होंने अपने काव्य को भी जीवन की तरह ही संघर्ष करते हुए निर्मित किया है। जीवन में संघर्ष किये बगैर भी संघर्ष की कविता लिखी जा सकती है लेकिन काव्यात्मक संघर्ष की सृष्टि जीवन में संघर्ष की वास्तविक उपस्थिति के बिना असंभव है। राजकमल के जीवन में संघर्ष ही संघर्ष था, इसलिए उन्हें काव्यात्मक संघर्ष से अपरिचय का सामना नहीं करना पड़ा। उनकी प्रतिनिधि कविता 'मुक्ति–प्रसंग' इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। यह त्रिस्तरीय अर्थवत्ता सम्पन्न कविता है जहाँ व्यक्ति, राष्ट्र और विश्व के संघर्षों का अन्तर्गुंफन उपलब्ध होता है। यह विभिन्न रोगों से मरनासन्न व्यक्ति, राष्ट्र और विश्व के मुमुक्षा की कविता है। यहाँ एक ओर वैश्विक और राष्ट्रीय संदर्भों से जुड़कर वैयक्तिक संबंधों को व्यापक एवं विविध आयाम प्राप्त होते हैं तो दूसरी ओर वैश्विक एवं राष्ट्रीय संदर्भों को आत्मीयता एवं आत्मपरकता की रचनात्मकता प्राप्त होती है।

Rajkamal Chaudhary is a poet of poetic struggle, who has created his poetry in a struggle like life. Poetry of struggle can be written without struggling in life, but creation of poetic struggle is impossible without real presence of struggle in life. Conflict was a struggle in Rajkamal's life, so he did not face unfamiliarity with poetic struggle. His representative poem 'Mukti-Prasang' is the best example of this. It is a three-tier poem, where infighting of the struggles of the individual, the nation and the world is available. It is a poem about the liberation of a person, nation and the world dying of various diseases. Here on the one hand, personal relations get wide and varied dimensions by connecting with global and national contexts, on the other hand, global and national contexts get creativity of intimacy and self-reliance.

मुख्य शब्द : अन्तर्गुंफन, अन्विति, अर्वाचीन, अविकल, अर्थवत्ता, आत्मपहचान, आत्मीयता, आत्मपरकता, आधुनिकतावादी विमर्श, उत्तर–आधुनिकतावादी विमर्श, एकान्विति, कल्याणकामना, काव्यात्मक संघर्ष, क्रीतदास, दिवास्वप्न, पच्चीकारी, मिथक, मुमुक्षा, रचनात्मकता, वामाचारी मार्ग, विखंडनवाद, संत्रास, संदर्भ–गर्भत्व, संपृक्त, संवलित, सहभोक्ता, सृजनक्षम, सन्निवेश। Insurrection, Discovery, Archaic, Immaterial, Economics, Self-Identification, Intimacy, Self-Centeredness, Modernist Discourse, Up-Modernist Discourse, Unity, Well-Being, Poetic Struggle, Ecclesiastical, Daydreaming, Mosaic, Myth, Piety, Creativity, Discourse Context-Conception, Conjoined, Convoluted, Co-Creator, Creation-Able, Contiguous

प्रस्तावना

अकविता, भूखी पीढ़ी एवं आहत पीढ़ी से जुड़े होने के कारण राजकमल चौधरी को इनकी शक्ति और सीमा से जोड़ा जाना स्वाभाविक है। इसके कारण प्रतिकूलता तब पैदा होती है, जब उनकी कविता को वाद के आग्रह के कारण सही संदर्भ में समझने से इन्कार कर दिया जाता है। नयी कविता के बाद की कविता में युवा आक्रोश और यौन–बिम्बों से संवलित कविताओं की भरमार देखने को मिलती है। राजकमल भी इस तरह की विद्रोही एवं गैर पारंपरिक प्रवृत्तियों वाली कविताएँ लिखते रहे हैं। इन सबके बावजूद अन्य कवियों की अपेक्षा उनमें कविता को जीवन से जोड़कर चलने का संकल्प स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इसके बावजूद इस सत्य को अनदेखा करना तथा उनकी कविता को भारतीय सामाजिक संदर्भ से काटकर देखना उचित नहीं है। उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से जिस प्रकार काव्यात्मक संघर्ष के काव्य–प्रतिमान की

स्थापना की है, उसके अध्ययन की आवश्यकता से प्रेरित होकर यह शोधालेख प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

संदर्भित शोधालेख के माध्यम से प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य राजकमल चौधरी के व्यक्ति एवं काव्य की रचनात्मक सोद्देश्यता को स्पष्ट रूप में सामने लाना है। उनकी रचनावली के प्रकाशित हो जाने के बावजूद उनके साहित्य का औचित्यपूर्ण मूल्यांकन करने का कार्य अभी शेष है। प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य उनकी कविता को सही संदर्भ में रखकर उनके काव्यात्मक संघर्ष को सामने लाने के साथ ही उनके कवि–व्यक्तित्व को भी स्पष्ट करना है।

साहित्यावलोकन

संदर्भित शोधालेख के लेखन क्रम में राजकमल चौधरी रचनावली, खण्ड : 1 से 8 (सं. डॉ. देवशंकर नवीन, 2015), राजकमल चौधरी : जीवन और सृजन (डॉ. देवशंकर नवीन, 2012), भारतीय प्राणधारा का स्वाभाविक विकास : हिन्दी कविता (प्रो. राजमणि शर्मा, 2006), समकालीन काव्य–यात्रा (नन्दकिशोर नवल, 2004), कविता का संघर्ष (कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, 2016), समसामयिकता और आधुनिक हिंदी कविता (डॉ. रघुवंश, 1993), समकालीन हिन्दी कविता : अज्ञेय और मुक्तिबोध के संदर्भ में (डॉ. शशि शर्मा, 2008), लम्बी कविताएँ : वैचारिक सरोकार (डॉ. बलदेव वंशी, 2009), नये प्रतिमान पुराने निकष (लक्ष्मीकांत वर्मा, 1996), नयी कविता में युगबोध (प्रसिद्ध नारायण चौबे, 2006) आदि का सिंहावलोकन किया गया है। इन कृतियों में राजकमल चौधरी के कृतित्व एवं इससे संबंधित वैचारिक पक्ष पर प्रकाश डाला गया है। परन्तु प्रस्तावित विषय पर इस रूप में कोई अद्यतन शोधकार्य नहीं हुआ है, अतः यह विषय शोधालेख हेतु सर्वथा उपयुक्त है।

परिकल्पना

राजकमल चौधरी की रचनात्मक उर्जा की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति उनकी कविता में हुई है। 'कंकावती' से 'मुक्ति–प्रसंग' तक की काव्यात्मक यात्रा करने वाले कवि को अपने रचनात्मक उद्देश्य का पता अवश्य रहा होगा। इसके बावजूद उनकी कविता की सीमा को रेखांकित करने का एकतरफा प्रयास किया जाता रहा है, जो दुर्भाग्यपूर्ण है। युग–परिवर्तन के इस दौर में मूल्यांकन–दृष्टि की संकीर्णता खलती है। राजकमल चौधरी जैसे उर्जावान कवि की 'मुक्ति–प्रसंग' जैसी सशक्त रचना को भी अशक्त और सामाजिक उद्देश्य से हीन कहना कहीं से भी उचित प्रतीत नहीं होता है।

कवि के रचनात्मक उद्देश्य का पता उनके काव्यात्मक संघर्ष की ऊष्मा से चल जाता है। अतः राजकमल चौधरी के 'काव्यात्मक संघर्ष' जैसे प्रकरण को विषय बनाकर अध्ययन करने से उनकी कविता की सार्थकता, मूल्यवत्ता एवं सोद्देश्यता की परख की जा सकती है। इस युक्ति के आधार पर प्रस्तुत शोधालेख की परिकल्पना की गई है।

शोध–विधि

प्रस्तावित शोधालेख में तथ्यानुमोदित आलोचनात्मक शोध–विधि, मूल्यांकनपरक विधि एवं आसन–कार्य विधि को अपनाया जाएगा। यहाँ मुख्य रूप से मननात्मक शोध–विधि अपनायी जाएगी।

शोध उपकरण

प्रस्तुत शोधालेख के लिए राजकमल चौधरी की कविताओं से संबंधित कृतियों का उपजीव्य ग्रंथ के रूप में उपयोग किया जाएगा, जबकि उनकी रचनाओं से संबंधित अन्य आलोचनात्मक सामग्रियों का उपयोग उपस्कर ग्रंथ के रूप में किया जाएगा। इन सबके अतिरिक्त संदर्भ–ग्रंथ के रूप में अन्य रचनाओं, समीक्षाओं, आलेखों, शोधालेखों, शोध–प्रबंधों, पत्र–पत्रिकाओं का उपयोग किया जाएगा। अन्य सहायक सामग्रियों के लिए इंटरनेट का उपयोग किया जाएगा।

प्रदत्तों का विश्लेषण

राजकमल चौधरी के जीवन और उनकी कविता के अंतःसूत्रों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उनके जीवन और कविता के सह अस्तित्व और संवलित होने में ही उनकी सार्थकता निहित है। कविता के माध्यम से किया गया संघर्ष काव्यात्मक संघर्ष है। राजकमल चौधरी ने यह संघर्ष किया है। उनके काव्यात्मक संघर्ष पर विचार करने के लिए यह जानना जरूरी है कि उनके जीवन का रचनात्मक उद्देश्य क्या रहा है? 'कविता का संघर्ष' उस कवि की कविता में देखने को मिलता है जिनके जीवन में संघर्षों का बाहुल्य रहता है, तथा उन संघर्षों से जिनका प्रत्यक्ष जुड़ाव होता है, जिनकी अनुभूति निर्विकल्प एवं अविकल होती है और अभिव्यक्ति सृजनक्षम। राजकमल चौधरी की कविता से उनका जीवनगत परिवेश असंपृक्त नहीं है। वह पूर्णतः उससे घिरी हुई है, आवृत है। व्यक्ति के लिए मुख्यतः समाज ही उसके परिवेश का काम करता है। राजकमल चौधरी की कविता के लिए भी सामाजिक परिस्थिति अपेक्षित रही है, उनके 'काव्यात्मक संघर्ष' के मूल्यांकन के लिए भी उनके समकालीन परिवेश का मूल्यांकन अपेक्षित है।

जो कवि अपनी जीवन–संघर्षों से गुजरते हुए अपनी काव्य–यात्रा के लिए संबल जुटाता है, उनके लिए काव्यात्मक संघर्ष की सामग्रियाँ सहज सुलभ रहती हैं। राजकमल चौधरी की कविता की अंतर्वस्तु इसका साक्ष्य प्रस्तुत करती है। दुष्यन्त कुमार ने लिखा है :

''हाथों में अंगारों को लिए सोच रहा था,
कोई मुझे अंगारों की तासीर बताए।''[1]

राजकमल चौधरी को किसी से 'अंगारों की तासीर' बताने के लिए अनुरोध करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। वे निरंतर अंगारों पर चलते रहे, अंगारों में जलते रहे। कविता का संघर्ष उस कवि की कविता में देखने को मिलती है, जो जीवन की गतिविधियों में गहराई से संलग्न रहता है। इस संदर्भ में समकालीन कवि और समीक्षक कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह ने लिखा है, ''कविता का संघर्ष जिन्दगी के व्यापक संघर्ष में हिस्सेदार हुए बिना नहीं चल सकता, जबकि संघर्ष की कविता, जिन्दगी और उसके अनिवार्य संघर्ष से दरकिनार रहकर भी लिखी जा सकती है।''[2]

राजकमल चौधरी अपनी कविता में पूरी तरह डूबे रहते हैं। उनकी कविता का उनके व्यक्तिगत जीवन से गहरा संबंध रहा है। धूमिल ने उनकी कविता और उनके व्यक्तित्व की संलिप्तता के संबंध में ठीक लिखा है :

''उसके लिए हम इत्मीनान से कह सकते हैं कि
वह एक ऐसा आदमी था जिसका मरना
कविता से बाहर नहीं है।''[3]

जिस कवि का जीना–मरना उसकी कविता से बाहर नहीं है, उस कवि की कविता का जिंदगी से संलिप्तता को समझा जा सकता है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ. नन्दकिशोर नवल की मान्यता है कि उनकी कविता का जिंदगी के साथ संलिप्तता मुक्तिबोध के समान दर्शनीय है। 'दास कविता' एवं 'मुक्ति–प्रसंग' जैसी कविताओं के प्रसंग में उन्होंने लिखा है, ''गिंसवर्ग की कविता पढ़कर पश्चिमी आलोचकों को वाल्ट ह्विटमैन की याद आती रही है। राजकमल की ऐसी कविताएँ कई तरह से मुक्तिबोध की याद ताजा कर देती हैं– वहीं आत्मपरकता, वही भावावेग, वही आक्रामकता, वही बिम्ब–शृंखला, वही वक्तृत्व–कला और वही सृजनशीलता, लेकिन मिजाज में सबकुछ अलग।''[4]

राजकमल की कविता में जो आत्मपरकता पायी जाती है, वह उनकी कविता की जीवन की संलिप्तता का द्योतक है। उनकी कविता में पायी जाने वाली आक्रामकता अस्वस्थ वर्तमान के प्रति अभिव्यक्ति है। भावावेग आक्रोश का पर्याय है। डॉ. नन्दकिशोर नवल ने ठीक लिखा है कि राजकमल चौधरी की कविता में आवेग और ठहराव की उपस्थिति एक साथ देखने को मिलती है। समकालीन कविता के अर्थ–गर्भत्व का मुख्य कारण उसका संदर्भ–गर्भत्व है। समकालीन कविता में शब्दों की पच्चीकारी आदि जैसे काव्य–उपकरणों का सायास संयोजन की प्रवृत्ति देखने को नहीं मिलती है। संदर्भ ही कविता का अर्थ–निर्धारक तत्त्व बन गया है। समकालीन कविता की स्थिति की व्याख्या करते हुए प्रो. राजमणि शर्मा ने लिखा है, ''समकालीन कविता शब्द के स्तर की पच्चीकारी को ध्वस्त करके संदर्भ में रम गई है। ....वस्तुतः इधर के कवियों ने अतीत के मूल्यवान मिथकों को चुनकर ग्रहण न किया होता तो कविता की वैचारिक प्रखरता के साथ उपजा हुआ समस्त जीवन–बोध अनभिव्यक्त रह जाता।''[5]

राजकमल चौधरी की कविता पर देशी–विदेशी साहित्यकारों का सापेक्षिक प्रभाव हो सकता है, लेकिन उसकी मूल प्रकृति राजकमल के प्राकृतिक जीवन से संघटित है। उनकी कविता की मौलिक पहचान का संबंध उनके जीवन की मौलिकता से है। उनकी मौलिकता को बखूबी पहचाना जा सकता है, उसे किसी अन्य देशी–विदेशी कवि के साथ मिलाकर देखना संभव नहीं है। राजकमल चौधरी के व्यक्तित्व और कृतित्व में अनेक प्रकार के विरोधाभास मौजूद हैं, लेकिन एक बात साफ है कि वे व्यक्तिगत समस्याओं के साथ ही राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं से संपृक्त कविताओं के बड़े कवि रहे हैं। इस दृष्टि से उनके 'मुक्ति–प्रसंग' जैसी कविता की तुलना निराला और मुक्तिबोध जैसे कवियों की 'राम की शक्तिपूजा' और 'अंधेरे में' जैसे कविताओं से की जा सकती है। इस संदर्भ में प्रसिद्ध आलोचक नन्दकिशोर नवल का कथन द्रष्टव्य है, ''राजकमल के कविता का तीसरा स्तर 'मुक्तिप्रसंग' में प्रकट हुआ है। यह एक लम्बी कविता है जो उनकी बीमारी के दौरान फरवरी–जुलाई 1966 में पटना अस्पताल के राजेन्द्र सर्जिकल ब्लॉक में लिखी गई थी। अपने प्रकाशन के बाद से ही यह कविता समकालीन साहित्य–जगत् में चर्चा का विषय बनी तथा 'राम की शक्तिपूजा' और 'अंधेरे में' के बाद तीसरी महत्त्वपूर्ण कविता मानी गई।''[6]

'मुक्ति–प्रसंग' कविता की यह विशेषता रही है कि वह कवि के व्यक्तित्व को केन्द्र में रखकर लिखी गई है, लेकिन वह समाज की परिधि का भी स्पर्श करती है, इसके साथ ही वह वैश्विक परिवेश का भी सन्निवेश करती है। कवि 'मुक्ति–प्रसंग' कविता के माध्यम से देह–यात्रा से देश–यात्रा ही नहीं करते हैं, बल्कि विश्व–यात्रा भी करते हैं। राजकमल चौधरी समाज और विश्व के पक्षधर होने के कारण सहज और स्वाभाविक जीवन एवं उसी प्रकार की नैतिकता के आकांक्षी रचनाकार हैं। उनका सभ्यता–विमर्श व्यापक और मानववादी है। उनके सभ्यता–विमर्श के केन्द्र में संपूर्ण मानवजाति है। उनका तत्संबंधी चिंतन मूलगामी है। भारत में उनके चिंतन स्तर को गाँधी के चिंतन स्तर का समझा जा सकता है। राजकमल चौधरी का वास्तविक अपराध यह है कि उन्होंने सत्ता के दुरूपयोग का विरोध करने की क्षमता अर्जित कर ली है, सत्ता के षड्यंत्र को समझ लिया है तथा वर्तमान समय में मौजूद लोकतंत्र का रहस्य जान लिया है। उन्होंने राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर सभ्यता के अमानवीय स्वरूप को जान लिया है। सब कुछ ढका हुआ है, उसे नंगा कर देने की जद्दोजहद में लगे रहने के कारण उन्हें नंगापन का संदेशवाहक मान लिया गया है। वैश्विकरण के वर्तमान दौर का आभास गाँधी को पहले हो गया था, क्योंकि वे जानते थे कि वर्तमान सभ्यता जिस दिशा में आगे बढ़ रही है, उसका अनिवार्य परिणाम क्या हो सकता है? गाँधी के चिंतन का सार प्रस्तुत करते हुए डॉ. राजकुमार ने लिखा है, ''गाँव और गाँववासियों को औद्योगिकीकरण की चपेट से बचाने के लिए गांधी ने 'मास प्रोडशन' के बजाय 'मासेज' द्वारा प्रोडक्शन की बात कही। वस्तुतः वे किसी स्थान की आबादी और पर्यावरण को विनाश से बचाने वाली नीति की ओर संकेत कर रहे थे, जिसे आज की भाषा में उपयुक्त टेक्नोलॉजी और टिकाऊ विकास कहा जा सकता है। ....वे एक ऐसी प्रगति की बात कर रहे थे जो प्रतिस्पर्धा पर नहीं, पारस्परिक सहयोग, भाई–चारे और प्रेम पर आधारित थी। गाँधी किसी अज्ञान से परिपूर्ण अंधकारयुग में वापसी की बात नहीं कर रहे थे, बल्कि वैकल्पिक जीवन–मूल्यों की पेशकश कर रहे थे; स्वैच्छिक सादगी, अपरिग्रह और मन्थरता में सौन्दर्य देखने की वकालत कर रहे थे, जिसे आधुनिकता ने पिछड़ेपन की निशानी बताकर अवैध घोषित कर दिया था।''[7]

पूँजीवादी सभ्यता की आलोचना करने में राजकमल चौधरी पीछे नहीं रहे हैं। इस सभ्यता ने मनुष्य को बेगाना बना दिया है। उनका सभ्यता–विमर्श जड़ न होकर गतिशील, व्यापक और बहुआयामी है। उन्होंने वैकल्पिक सांस्कृतिक परिवर्तन की बात की है, चेतना और

चिंतन के दिशा–परिवर्तन की बात कही है। मनुष्य के श्रम की प्रतिष्ठा का ध्यान रखने वाले कवि राजकमल चौधरी मानवीय श्रम को दासता से मुक्त कराना चाहते हैं। दूसरों के विकास के लिए श्रम करना दासता है, जबकि अपनी आत्म–प्रतिष्ठा और चेतन के विकास के लिए स्वेच्छा से श्रम करना मानवीय गरिमा एवं श्रम की प्रतिष्ठा के अनुरूप है। इस अर्थ में राजकमल चौधरी संघर्ष की कविता नहीं लिखते हैं, बल्कि उसके स्थान पर कविता का संघर्ष रचते हैं। उदाहरणार्थ उनकी कुछ पंक्तियों को देखा जा सकता है, जहाँ कवि अपनी रचना में पूरी तरह संलिप्त नजर आते हैं :

''तुम्हारे हैं पसीने और भरोसे या साहस, विश्वास और खतरे
और सूझ–बूझ–जूझ के तरीके तुम्हारे हैं जैसे–
वैसे आजीविका के लिए जो काम तुम करते रहे; वे काम
आखिर हैं
किसके हित में?
–तुम्हारे? या–स्वामियों के–स्वामियों के–स्वामियों के–
स्वामियों के–स्वामियों के...?
घोषित या अघोषित दास हम; यानि तुम लोग और–मैं–किन
लोगों की
दासता में जी रहे हैं?
बेसब्र से उचारे गए मेरे सवाल के जवाब में गूँजती हैं
आवाजें
शोर और सीटियाँ, हॉर्न और घंटियाँ, हाँक और टिटकारियाँ
गूँजती हैं और गूँजती रही हैं निरंतर कैलेंडर–दर–
कैलेंडर;
तो मुझे ही उन जवाबों का जवाब भी देना है
और भूल जाना है कि मैंने सवाल क्या किए?''[8]

राजकमल चौधरी की समझ सामान्य–बोध से भिन्न थी। उनकी मान्यता है कि हमें अपने श्रम की ही नहीं, श्रमफल की भी समझ होनी चाहिए ताकि यह समझा जा सके कि श्रमजन्य उत्पाद में हमारी हिस्सेदारी है या नहीं? अन्यथा हमारा श्रम बाजार का बिकाऊ माल बनकर रह जाएगा और हम उसके लाभ से वंचित रह जाएंगे। इसे न समझने के कारण ही साधारण जनता पूँजीवादी व्यवस्था में 'क्रीतदास' नजर आती है। राजकमल ने साधारण जनता के साथ अपने को जोड़ते हुए स्वयं को क्रीतदास माना है। पूँजीवादी व्यवस्था में आम आदमी के जीवन में जो बेगानगी पायी जाती है उसका खुलासा करते हुए मार्क्स ने जो चिंतन प्रस्तुत किया है, वह विचारणीय है। इस संदर्भ में अभय कुमार दुबे का कथन द्रटव्य है, ''पेरिस की पांडुलिपियों में मार्क्स ऐसे पहले दार्शनिक बनकर उभरे जिन्होंने मनुष्य की जीवन–स्थितियों में सामाजिक–आर्थिक स्थितियों के बुनियादी महत्त्व को रेखांकित किया। ...चूँकि श्रम करता हुआ मनुष्य उनके विचार के केन्द्र में था, इसलिए उन्होंने उसके बेगानेपन, शोषण और तकलीफ पर गहराई से चिंतन किया। मार्क्स ने जो विमर्श विकसित किया उसका मकसद मेहनत करते हुए इनसान के रोजमर्रा के भौतिक हालात सुधारने तक सीमित नहीं था, बल्कि वे ऐसी परिस्थितियों का सृजन करना चाहते थे जिनके तहत वह पूरी तरह आजाद होकर एक संपूर्ण और संतुष्ट जीवन जीते हुए सामाजिक धरातल पर आत्माभिव्यक्ति कर सके।''[9]

राजकमल चौधरी भी आम आदमी की जीवन स्थितियों को बदलना चाहते हैं। उन्होंने देश की सामान्य जनता की स्थिति के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए लिखा है :

''मगर भीड़ अब खाने के लिए गेहूँ
और सो जाने के लिए किसी भी गन्दे बिस्तरे के सिवा कोई बात
नहीं कहती है
प्रजाजनों के शब्दकोश में नहीं रह गए हैं दूसरे शब्द
दूसरे वाक्य
दूसरी चिंताएँ नहीं रह गई हैं।''[10]

कवि की कविता आम जनता की दुखद एवं दयनीय स्थिति से संपृक्त है, वह स्वयं एवं अपनी कविता को इनसे असंपृक्त नहीं रख पाते हैं। यही कारण है कि राजकमल चौधरी की कविता में 'कविता का संघर्ष' देखने को मिलता है। कवि के शब्दों में कहा जा सकता है :

''किन्तु भीड़ से विछिन्न असंपृक्त रहकर भी
भीड़ से मुक्त मैं हो नहीं पाता हूँ
मुक्त हो जाना कविता से पहले और मृत्यु से पहले
मुक्त हो जाना असंभव है।''[11]

कवि की यही जन–संपृक्ति उसे कविता का संघर्ष रचने के लिए बाध्य करती है। इसी अर्थ में राजकमल चौधरी कविता के संघर्ष के कवि सिद्ध होते हैं। कवि का सक्रिय हस्तक्षेप कविता के रूप में सामने आता है। उनका कवि जीवन, उनके मानवीय जीवन से भिन्न नहीं है। इसी स्थिति को ध्यान में रखकर धूमिल ने लिखा है :

''उसे जिंदगी और जिंदगी के बीच
कम से कम फासला
रखते हुए जीना था।''[12]

राजकमल चौधरी के जीने और लिखने की यही शर्त थी और उन्होंने अपनी शर्त के अनुसार जिया और लिखा। राजकमल चौधरी कविता के बाहर न रहकर उसमें 'इनवॉल्व' रहते हैं। उनकी कविता में संघर्ष के जो विभिन्न रूप और स्तर देखने को मिलते हैं वे उनके जीवन–जगत के संघर्ष से जुड़े हुए हैं। उनके काव्यगत एवं जीवनगत संघर्ष वैयक्तिक स्तर से वैश्विक स्तर तक को आच्छादित करते हैं। उनके जीवन–संघर्ष की काव्यगत अभिव्यक्ति के संदर्भ में डॉ. नन्दकिशोर नवल ने लिखा है, '''इनवॉल्वमेंट' 'राम की शक्तिपूजा' और 'अंधेरे में' भी है, लेकिन 'मुक्तिप्रसंग' में तो वह अत्यधिक व्यापक है, दूसरी तरफ वह अत्यधिक आत्मपरक कविता है। उसकी शक्ति का

स्रोत संभवतः इन दो अतिवादी बिन्दुओं का मिलन और संघर्ष ही है।''[13]

राजकमल चौधरी की कविता में आन्तरिक और बाह्य– दोनों प्रकार के तनाव मौजूद हैं। वस्तु–तत्त्व के साथ ही शिल्पगत वैशिष्ट्य के कारण जो तनाव–सृष्टि की गयी है, वह समकालीन कविता की खास विशेषता बन गयी है। जीवनगत तनाव जब काव्यगत तनाव में परिणत हो जाता है तो कविता के संघर्ष की सृष्टि होती है। राजकमल चौधरी की कविता की अन्तर्वस्तु सूचना, संदर्भ और संवेदना से निर्मित है, ये सभी चीजें अपनी भाषिक संरचना के साथ उपस्थित हुई हैं।

राजकमल चौधरी की काव्यात्मक संवेदना में स्त्री और यौन–क्रियाओं का आधिक्य है, इसलिए उनकी अभिव्यक्ति में यौन–बिम्बों की प्रधानता देखने को मिलती है। इस काव्यात्मक संवेदना की अपनी निजी विशेषताएँ हैं। इन विशेषताओं का मूल्यांकन करते हुए डॉ. नन्दकिशोर नवल ने लिखा है, ''उनकी विशेषता इस बात में है कि उनका मानस नई कविता के कवियों की तरह 'यौन–वर्जनाओं का पुंज' नहीं था। वे कुंठाग्रस्त नहीं थे, इसलिए उन्होंने अकुंठ भाव से अपनी कविता में यौन–बिम्बों का प्रयोग किया है। यह समझना भी भूल होगी कि वह उन्होंने अभिजात रूचि को धक्का देने के लिए किया है। ऐसा हम युवा कविता के दूसरे निर्माताओं में देखते हैं। राजकमल का तो व्यक्तित्व ही इन चीजों से निर्मित हुआ था। उनका लक्ष्य संपूर्ण आधुनिक सभ्यता का अस्वीकार था और वे संपूर्ण आधुनिक सभ्यता को धक्का देना चाहते थे, रूचि विशेष को नहीं। जहाँ उन्होंने सरल, सुन्दर और सुखी जीवन की आकांक्षा प्रकट की है, वहाँ मुक्तिबोध की तरह ही उनका स्वर बहुत कोमल और आर्द्र हो गया है।''[14] गति और ठहराव से निर्मित राजकमल की कविता का तनाव अपना सौन्दर्य प्रतिमान स्वयं रचता है।

राजकमल चौधरी की मूल समस्या भारतीय और वैश्विक संदर्भों में आधुनिक पश्चिमी सभ्यता द्वारा उत्पन्न की गई समस्या की सबसे प्रमुख और बड़ी समस्या थी। मानवीय भावों का अभाव इस सभ्यता की सबसे बड़ी समस्या बन गई है। दो विश्वयुद्धों और विश्व में युद्ध की आशंका इसके दुखद परिणाम हैं। इन परिणामों को झेलने के लिए मानव की आत्मा तैयार नहीं है। मुक्तिबोध के सभ्यता विमर्श का उल्लेख करते हुए डॉ. शंभुनाथ ने लिखा है, ''उनका रूखा बौद्धिक अकेलापन अज्ञेय के भव्य अभिजात अकेलेपन से भिन्न था। उस पर पश्चिमी सभ्यता की गहरी मार पड़ रही थी। उस समय स्वतंत्र राष्ट्रीय आत्मपहचान के लिए जूझ रहा भारत पश्चिमी सभ्यता में फँसता जा रहा था। फिर भी मुक्तिबोध के अपने अकेलेपन में जनसाधारण से गहरा नाता था। ...उन्हें पूँजीवादी आधुनिकता की छद्म संस्कृति से घृणा थी और उस आधुनिकताबोध से कोई सरोकार न था, जिसमें उत्पीड़नकारी शक्तियों, पूँजीवादी शोषण और संघर्षशील जनता का बोध शामिल न हो।''[15]

मुक्तिबोध की तरह ही राजकमल चौधरी का सभ्यता विमर्श भी विश्व के जनसाधारण की कल्याणकामना से जुड़ा है। राजकमल ने उस सभ्यता का विरोध किया है जो जनसामान्य को छोड़कर कुछ खास वर्ग और कुछ खास लोगों के कल्याण तक सीमित हो। इन दोनों कवियों के विमर्श के केन्द्र में विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि और स्वातंत्र्योत्तर भारत की दुर्दशा है। इसे केवल बौद्धिक विमर्श के माध्यम से नहीं समझा जा सकता है। इसके लिए गहरी जन–संपृक्ति की आवश्यकता होती है। समकालीन कवियों में मुक्तिबोध के बाद राजकमल चौधरी ही दूसरे ऐसे कवि हैं, जिनमें आधुनिकतावादी विमर्श के साथ ही उत्तर–आधुनिकतावादी विमर्श भी देखने को मिलता है। राजकमल चौधरी में विखंडनवाद की प्रवृत्ति की झलक मिलती है। इस बौद्धिक उपकरण के सहारे चीजों के छिपे हुए अर्थ के उद्घाटन में सहायता मिलती है। यूरोपीय सभ्यता का मानवीय चेहरा गौण होता जा रहा है और उसका अमानवीय चेहरा अधिक भयावह रूप में सामने आ रहा है। भारत भी उसके अमानवीय स्वरूप को ग्रहण करने के लिए बेताब दिखायी देता है। सभ्यता के भारतीय परिवेश का उल्लेख करते हुए डॉ. शंभुनाथ ने लिखा है, ''मुक्तिबोध के युग में देश की आजादी पश्चिमी सभ्यता के भोगवादी तत्त्वों के आगे आत्मविसर्जन का मार्ग बनती जा रही थी। लोग उसके उदारवादी मूल्यों की तरफ आकर्षित न होकर भोगवाद की ओर बढ़ रहे थे।''[16]

आधुनिकता के आख्यान के सकारात्मक तत्त्व दुनियाभर के बुद्धिजीवियों के आकर्षण का केन्द्र बना रहा। इससे प्राचीन जड़ परंपरा के मोह–जाल से बाहर निकलने में मदद मिलती है। लेकिन उपनिवेशवादी मानसिकता के त्रास ने सब गुण गोबर कर दिया। सांस्कृतिक साम्राज्यवाद आज की सबसे बड़ी सभ्यता बन गई है। आज का बुद्धिजीवी दुविधा और द्वन्द्वात्मक चिंतन के दौर से गुजर रहा है। मुक्तिबोध और राजकमल जैसे कवियों ने इस संकट को समय रहते देख लिया था। बुद्धिजीवियों के द्वन्द्व का विश्लेषण करते हुए डॉ. शंभुनाथ ने लिखा है, ''नई आधुनिकता का एक धड़ा अमेरीकी आत्मा के संकट को अपनी आत्मा का संकट बनाकर बौद्धिक प्रत्यारोपण के अभियान में लगा था, जबकि दूसरा धड़ा सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के प्रति गहरी चिंता व्यक्त कर रहा था। उनकी चिंता के केन्द्र में व्यक्ति की आत्मपहचान थी। लेकिन मुक्तिबोध जैसे कवि का 'व्यक्ति' अपने अकेलेपन में भी जनसाधारण का अंग था, उसके दुख–दर्द का सहभोक्ता था। वे महसूस करते थे कि आधुनिकता के महाख्यान अभिजात दिमागों से उजड़कर भी जनसाधारण के दिवास्वप्न में अभी बने हुए हैं।''[17]

भारतीय संदर्भ में कहा जा सकता है कि हमारी आधुनिकता हमारे देशकाल और परिस्थिति के अनुकूल होना चाहिए थी। वह लादी गई आधुनिकता नहीं होनी चाहिए। उसे प्राचीन जड़वादी प्रवृति से मुक्त किन्तु आत्मचेतना और आत्मपहचान से सम्पन्न होना चाहिए। गाँधी के चिंतन में ये चीजें देखने को मिलती हैं। वे स्वयं मध्यकालीन संतों की सांस्कृतिक विरासत को आत्मसात कर एक आधुनिक सभ्यता की नींव रख चुके थे। लेकिन हमने उनका रास्ता छोड़ पश्चिमी–अमेरिकी सभ्यता की राह पकड़ ली। इस संदर्भ में भी डॉ. शंभुनाथ का कथन द्रष्टव्य है, ''दुनिया में तर्क, स्वातंत्र्य और समानता की कोई एक दिशा नहीं हो सकती, क्योंकि दुनिया के हर राष्ट्र–राज्य या समाज की अपनी खासियत है। फिर भी

आधुनिकता का एक वैश्विक मॉडल बार–बार प्रक्षेपित किया गया, क्योंकि उपनिवेशवाद जहाँ से भी लौटा था, अपनी छाप छोड़ आया था। वह हर उपनिवेशित समाज में बौद्धिक दरारें पैदा करके लौटा था, हर व्यक्तित्व में एक ऐसा विभाजन कर चुका था, जिसका बोझ उत्तर–औपनिवेशिक काल का आदमी आज भी ढो रहा है, भले उसे उसका अहसास न हो।''[18] राजकमल चौधरी को इस विडंबनापूर्ण स्थिति का तीखा अनुभव था। उन्होंने लिखा है :

''इस दुनिया की प्रत्येक मजबूत औरत नंगी और दो टुकड़ों में बँटी हुई
यह औरत मेरी माँ और मेरी बीवी मेरा देश और मेरी जिंदगी।''[19]

यह विभाजन विडंबनाजनक स्थिति का निर्माण करता है, जिसका शिकार प्रत्येक बुद्धिजीवी व्यक्ति होता है। राजकमल के जीवन में इस विडंबना का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। अत्यधिक बौद्धिक होने के कारण विभाजन की सर्वाधिक यातना भी उन्हें ही झेलनी पड़ी। वैयक्तिक स्तर से लेकर राष्ट्रीय एवं बौद्धिक स्तर तक उन्हें अपने आपको सबसे अलग–थलग रखना पड़ा। फिर भी उनका सर्वाधिक लगाव जनसाधारण के प्रति ही रहा। उनका यह लगाव बौद्धिक एवं नैतिक स्तर का होने के साथ ही क्रियात्मक स्तर का भी रहा है।

राजकमल का व्यक्तित्व विरोधाभासपूर्ण और वैचित्र्यपूर्ण है। उनकी बेचैनी उन्हें विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए भटकाती रही। इसके लिए उन्हें यहाँ–वहाँ, जहाँ–तहाँ जाना पड़ा। उन्होंने बिना किसी कुंठा के निषेधात्मक तत्त्वों से नाता जोड़ने में हिचकिचाहट महसूस नहीं की। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का विश्लेषण करते हुए डॉ नन्दकिशोर नवल ने लिखा है, ''दिलचस्प यह भी है कि एक तरफ राजकमल की तंत्र–साधना चल रही थी, पंचमकार सेवन सहित, और दूसरी तरफ फरवरी, 1967 में सम्पन्न हुए आम चुनाव का क्रांतिकारी दृष्टिकोण से विश्लेषण करते हुए वे कह रहे थे : 'समाज–जीवन, अर्थ–चक्र, शिक्षा–व्यवस्था, कृषि और उद्योग, संस्कार और संस्कृति के सारे मोर्चों पर क्रान्ति के लिए– आमूल परिवर्तन के लिए– जनता को प्रस्तुत करना, केवल हमलोगों का कर्तव्य है, क्योंकि अन्य सभी सामाजिक कार्यकर्ता, पत्रकार, उपदेशक, शिक्षक, नेता, सन्यासी और राज्याश्रित बुद्धिजीवी स्वार्थ–लाभ और सत्ता की राजनीति में इस तरह उलझ गए हैं कि खेतों में काम करनेवाली जनता और मशीनों में काम करनेवाली जनता उनके पास पहुँच नहीं पाती है, और वे लोग जनता के पास जाने की इच्छा नहीं रखते हैं, अब भी नहीं! मैं राजकमल चौधरी, अपनी तरफ से जनता के पास वापस चले जाने का वादा करता हूँ, मेरी सही यात्रा वहीं से शुरू होगी।''[20]

उनके जीवन और साहित्य को सरल रेखा में समझना संभव नहीं है। यह एक जटिल प्रत्यय है, जिसे परिभाषित करना और व्याख्यायित करना एक कठिन प्रक्रिया की मांग करती है। तमाम अंतर्विरोधों और विडंबनाओं से निर्मित उनका व्यक्तित्व और काव्य एक ही विडंबना का विरोध करता है, वह विडंबना है पूँजीवादी व्यवस्थाजन्य मानवीय संत्रास। इस संत्रास से व्यक्ति, समाज और विश्व को मुक्ति दिलाना ही उनकी साधना का मूल उद्देश्य था। इसी उद्देश्य के लिए उन्होंने जीना सीखा और मरना सीखा। धूमिल ने उनके विषय में ठीक लिखा है :

''–एक बात साफ थी
उसकी हर आदत
दुनिया के व्याकरण के खिलाफ थी।''[21]

राजकमल चौधरी को आवयविक बुद्धिजीवी माना जाना चाहिए। उन्हें पेशेवर बुद्धिजीवी की श्रेणी में रखना न्यायसंगत नहीं होगा। डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है, ''ग्राम्शी के अनुसार, समाज में बुद्धिजीवी दो प्रकार के होते हैं, पेशेवर और आवयविक। प्रायः ज्ञान की एकांत साधना करनेवाले पेशेवर बुद्धिजीवी होते हैं, लेकिन जो किसी वर्ग, समुदाय और समाज की जिन्दगी की वास्तविकताओं और आकांक्षाओं की व्याख्या करते हुए उस वर्ग, समुदाय और समाज को इतिहास में अपनी स्थिति समझने और उसे बदलने के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं, वे आवयविक बुद्धिजीवी होते हैं।''[22]

भौतिकवादी मूल्यहीन संस्कृति ने मनुष्य को समृद्धि के बीच कंगाली दी है। यह वर्तमान संस्कृति की विडंबनाजनक स्थिति है। राजकमल चौधरी ने इस संस्कृति का सक्रिय विरोध किया है। यद्यपि उनके विरोध का स्वरूप प्रतिक्रियामूलक है, लेकिन उनका विरोध व्यापक और वास्तविक है।

जीवन और रचना के बीच का रचनात्मक तनाव ही काव्यात्मक संघर्ष का उपजीव्य होता है। राजकमल की कविता में ऐसी उपजीव्य सामग्रियों की उपलब्धता सर्वसुलभ है। मुक्ति–प्रसंग उनकी प्रतिनिधि रचना है, वह अपने युग की भी प्रतिनिधि रचना बन गयी है। यहाँ कवि के जीवन और उनके युग से संबंधित यथार्थ के बीच की टकराहट और उनके बीच के तनाव, रचनात्मक संघर्ष के दर्शन एक साथ होते हैं। उनकी रचना और जीवन की तारतम्यता अविच्छिन्न रूप से सामने आती है। इससे उनके जीवन और सृजन की एकतानता के साथ ही उन युग–यथार्थ का पूरा परिदृश्य दृश्यमान हो जाता है। उनकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति इन शब्दों में व्यक्त हुई है :

''एक ही प्रार्थना हो सकती है आधुनिक मनुष्य की
व्यक्तिगत प्रार्थना
अपनी मुक्ति के लिए–
संगठन और संस्थाओं के विरूद्ध हो जाना अर्थात्
शासन–तंत्र और सेनाओं के विरूद्ध हो जाना
अपनी इकाई बचाने के लिए एक ही प्रार्थना
वास्तविक जीवन और कविता में.....''[23]

राजकमल चौधरी अपने वास्तविक जीवन और कविता में एक ही प्रार्थना करते हैं। वह प्रार्थना यह है कि संगठनों और संस्थाओं के अधिनायकत्व से मुक्ति मिल जाए। व्यक्ति के अस्तित्व और महत्त्व को स्वीकार किया जाए। व्यक्ति संगठन और संस्था से बड़ा नहीं हो सकता है, लेकिन उसी के संगठित समुदाय से समाज बनता है और संगठन एवं संस्था का उद्देश्य समाज का हित करना

ही हो सकता है, होता है। सामाजिक हित के विरूद्ध होने पर सामाजिक यथार्थ तथा सामाजिक हित–अहित को समझने वाला व्यक्ति प्रतिरोध रचना अपना कर्तव्य समझता है। राजकमल इसी सामाजिक उद्देश्य से प्रेरित होकर अपने अस्तित्व को संगठनों और संस्थाओं के जनहितकारी चेष्टा के विरूद्ध किये जा रहे कृत्यों की जिम्मेदारी से स्वयं को मुक्त रखना चाहते हैं। युग का प्रहरी होने के कारण कवि जनता को अपनी कविता के माध्यम से चेतावनी भी देते हैं, संगठनों और संस्थाओं के कार्यों के प्रति शंका भी प्रकट करते हैं।

राजकमल चौधरी अत्यंत जुझारू कवि हैं। उनकी समग्र रचनाएँ इसके प्रमाण हैं। अभी तक उनका सम्यक् मूल्यांकन नहीं किया गया है। अधिकांश जगहों पर उन्हें गलत ही समझा गया है। इस संदर्भ में डॉ. शशि शर्मा का मत है, ''उनकी लंबी कविता 'मुक्ति–प्रसंग' में इसे देखा जा सकता है। राजकमल चौधरी के जीवन का असामयिक अंत हुआ था। वे एक विवादास्पद कवि और व्यक्ति रहे। उनकी कविता का समुचित मूल्यांकन किए जाने के बदले उन्हें यौन–भावना, अकविता का कवि कहकर खारिज किया जाता रहा। हमारी धारणा है कि समग्र कविताओं के मूल्यांकन से राजकमल चौधरी के प्रति धारणा बदलेगी, उनकी कविता की शक्ति और विविधता को पहचाना जाएगा।''[24]

डॉ. शशि शर्मा ने स्पष्टतः यह स्वीकार किया है कि समकालीन कवियों में मुक्तिबोध ऐसे पहले सार्थक कवि हैं, जिन्होंने सातवें दशक में ही अन्य समकालीन कवियों को 'आत्मघाती' तथा 'यौन–केन्द्रित विद्रोह' से हटकर अपने सामाजिक आशयों के लिए सृजनात्मक संघर्ष की प्रेरणा दी। डॉ. शर्मा की यह भी मान्यता है कि, ''अकविता के कवि राजकमल चौधरी ने युग की इस आवश्यकता को पहचाना। उनकी लम्बी कविता 'मुक्ति–प्रसंग' में इसे देखा जा सकता है।''[25]

राजकमल चौधरी की कविता में उनकी सामाजिकता को नहीं देख पाने के कारण उनके काव्यात्मक संघर्ष की भी उपेक्षा की जाती रही है। समकालीन कविता पर विचार करने के क्रम में डॉ. रघुवंश ने राजकमल चौधरी को आत्म–प्रक्षेप का कवि माना है। कविता के माध्यम से सामाजिक जीवन में बदलाव के लिए किये गये काव्यात्मक एवं जीवनगत संघर्ष को अनदेखा किया गया है। उनके अनुसार, ''उनकी कविता में युग का विघटन, विकृति, असंगतियाँ, वर्जनाएँ आदि कवि के व्यक्तित्व में घटित–व्यंजित होती हैं। इस प्रकार लगता है कि कवि का उद्देश्य आज की वस्तुस्थिति को सही आयाम में खोजना नहीं है, वरन् सारी स्थिति से अनुभव का तादात्म्य स्थापित कर लेना है और उसकी दृष्टि में यथार्थ के अनुभव का ठीक रूप यही है।''[26] 'मुक्ति–प्रसंग' का विश्लेषण और मूल्यांकन करते हुए केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा है, ''यह कविता कदापि मनुष्य की मुक्ति के प्रसंग की कविता नहीं है। राजकमल ने मुक्ति नाम की सार्थकता उधार ली है और इस उधार ली हुई सार्थकता से मनुष्य को उसके संत्रास से उबार सकने का सामर्थ्य दिखलाया है। निस्सन्देह राजकमल का यह प्रयास अपने आप में एक अनूठा प्रयास है और यह अनूठा प्रयास हिन्दी को उपलब्ध होकर भी निस्सार प्रयास मात्र है। यह कविता अपने ढंग की अनूठी कविता होकर भी एक असफल कविता है।''[27]

अग्रवाल जी के अनुसार इस कविता की सार्थकता सिद्ध नहीं की जा सकती है। यहाँ जीवन–संघर्ष जैसी कोई चीज नहीं है। मानव की मुक्ति का कोई ठोस सूत्र हाथ नहीं आता है। इसके विपरित कवि आलोचक डॉ. बलदेव वंशी ने आलोच्य कविता में राजकमल के काव्यात्मक संघर्ष को देखा, पहचाना और रेखांकित किया है। उनके अनुसार कविता में व्यक्त अनुभव कवि का कामाया हुआ सत्य है, ओढ़ा हुआ या आरोपित सत्य नहीं है। वंशीजी के अनुसार राजकमल चौधरी लोकतांत्रिक संगठनों और संस्थाओं का विरोध इसलिए करते हैं कि ये जनता, देश, समाज, राष्ट्र और अंतरराष्ट्रीय दायित्व के ठीक से निर्वहन करने में असफल हो रहे हैं। इसलिए कवि इन संस्थाओं के औचित्य और सार्थकता को प्रश्नांकित करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं निकाला जाना चाहिए कि उनके लिए इन संस्थाओं का कोई अर्थ नहीं है। ये संस्थाएँ जनहित के कार्य के लिए स्थापित किये गये हैं, इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं। जनहित का कार्य नहीं कर पाने के कारण वे प्रश्न–चिह्न के घेरे में आ गये हैं। इन पर सवाल नहीं उठाना कवि–कर्तव्य से च्युत होने के समान है। राजकमल चौधरी ने कवि होने के कारण अपने दायित्व का निर्वाह किया है ताकि वे अपने रचनात्मक संघर्ष को सार्थक सिद्ध कर सके। डॉ. बलदेव वंशी के शब्दों में कहा जा सकता है, ''राजकमल चौधरी अपनी कविता और मृत्यु से पूर्व इस धरती के उद्धार और मुक्ति की बात करते हैं। उसी में भारत की तथा राजकमल चौधरी की मुक्ति तथा स्वाधीनता भी सम्मिलित है। ... वीभत्स, औघड़, नग्न, अप्रिय दृश्यों संदर्भों में जाने की साहसिकता से लेकर मृत्यु के सर्व–स्वीकार तक की दुःसाहसिकता से वह एक नए समकालीन यथार्थ के सौन्दर्य को उजागर करता है। इससे कवि के संवेदनात्मक उद्देश्यों की गहराई, व्यापकता और व्यग्रता तो सिद्ध होती है, साथ ही समस्त घृणित के साथ टकराने के जोखिम भी अप्रकट नहीं रहते।''[28]

राजकमल चौधरी के साहस और दुःस्साहस को मुद्राराक्षस के कथन से भी समर्थन मिलता है। उनका कथन है, ''इतने सीधे तौर पर इन बातों को कहना अब तक शायद लेखकीय अनुशासन के विरूद्ध माना जाता रहा है। इस खोखले अनुशासन को आज की पीढ़ी के लेखक ने जिस निर्ममता से तोड़ा है उसके लिए उसे इतिहास में याद किया जाएगा, इसमें शक नहीं। दरअसल साहित्य को सीधे समाज से जोड़ने वाले मुहावरे की अनायास ईजाद तो अब हुई है।''[29] यहाँ समाज को साहित्य से जोड़ने की बात कही गयी है, छोड़ने या तोड़ने की नहीं। जीवन और समाज से असंबद्ध होकर साहित्य अपनी सार्थकता खोकर औपचारिकता का निर्वाह भर रह जाता है। राजकमल चौधरी का रचनात्मक उद्देश्य इससे भिन्न है। वे साहित्य को जीवन और जगत् से सीधे जोड़कर देखने के पक्षधर हैं। वैयक्तिकता और सामाजिकता की एकान्विति में उनका अटल विश्वास है।

उनके लिए दोनों के विपरितार्थक होने से अधिक सार्थक स्थिति उनकी अन्विति में देखना चाहिए।

राजकमल चौधरी के जीवन और सृजन पर पुस्तकें लिखने वाले, आठ खण्डों की राजकमल चौधरी रचनावली को संगृहित और संपादित करनेवाले तथा उनके साहित्य के विशेषज्ञ डॉ. देवशंकर नवीन का कथन है, ''लंबी बीमारी के दौरान रोग शैया पर बैठकर निर्बंध और निर्द्वन्द्व साहस के साथ लिखी गई लंबी कविता 'मुक्ति प्रसंग' में कवि ने लगभग दो दशक की आजादी के दौरान देश में आई व्याधियों को व्यक्त करने हेतु इतिहास, पुराण, मिथक, यथार्थ, विश्व घटनाचक्र आदि के सहारे गढ़े हुए बिंबों का और निजी बीमारी का उपयोग किया है। ऐसा परिलक्षित होता है कि उनकी पूरी सृजन–यात्रा इस एक ही विषय बोध के आस–पास नाना तरह से पूरी हुई है। हां, यह बात जरूर है कि उस विषय का आयाम इतना विस्तृत है कि उनमें सारे के सारे परिदृश्य समा जाते हैं।''[30]

'मुक्ति–प्रसंग' के मिथकीय संदर्भ के महत्त्व को समझे बिना इस कविता के महत्त्व को समझना कठिन है। मिथक के प्रयोग की सार्थकता प्राचीन से अर्वाचीन काल तक समान रूप से रही है। राजकमल चौधरी के काव्य में भी इसके सार्थकता को देखा–परखा जाना चाहिए। इसके अभाव में पूरी कविता के निरर्थक उद्देश्यहीन हो जाने का खतरा है। मिथक की सार्थकता और उपयोगिता पर विचार करते हुए पाश्चात्य विचारक कैसिरेर का मत है, ''मिथक का सत्य सर्वथा आत्मपरक एवं मनोवैज्ञानिक सत्य होता है और वह सांसारिक वास्तविकताओं को मानवीय भावनाओं की शब्दावली में व्यक्त करता है।''[31]

साहित्य में मिथक के प्रयोग के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए प्रो. राजमणि शर्मा का कथन है, ''वैदिक एवं पौराणिक कथा, इतिहास, चरित्र आदि जो हमारे सामने हैं, उनकी यथार्थता में संदेह नहीं और उन्हें आज के रचनाकार मिथक के रूप में अपनी रचनाओं में प्रयुक्त करते हैं जो एक तरफ कथा को, दूसरी तरफ भाषा को समृद्ध करता है।''[32] मिथक जीवन के यथार्थपरक संदर्भों को नवीन सौन्दर्य से मंडित करने में रचनाकार की सहायता करता है, उन्हें अर्थगौरव प्रदान करता है, समकालीनता के गर्भ में प्रवेश करने की सुविधा मुहैया कराता है। समकालीन साहित्य में मिथक के बढ़ते प्रयोग की सार्थकता पर प्रकाश डालते हुए प्रो. राजमणि शर्मा का कथन उचित प्रतीत होता है, ''जनजीवन के समकालीन प्रश्नों से जूझने, हमारी जातीय तथा वर्गीय चेतना को अग्रसर करने तथा उन्हें ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझाने के लिए समकालीन कवि बौद्धिक कुशलता के साथ बार–बार मिथक का प्रयोग कर रहा है।''[33]

डॉ. बलदेव वंशी ने 'मुक्ति–प्रसंग' को व्यवस्था के शाश्वत विरोध की कविता के रूप में परिभाषित किया है। उन्होंने इस कविता की त्रिस्तरीय अर्थवत्ता का उद्घाटन करते हुए लिखा है, ''मुक्ति प्रसंग में कवि ने अपने कथ्य को तीन स्तरों पर उठाया है। स्वातंत्र्योत्तर काल का व्यक्ति, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर– तीनों को एक साथ गूंथा है। तीनों संदर्भ अपने आप में प्रायःसामान्तर और परस्पर उलझे हुए हैं। इन्हें एक विशिष्ट सन्निधि में तनावपूर्ण मुहावरे में पिरोया गया है। कहीं–कहीं तो मात्र एक शब्द को रखकर विस्तृत अर्थ–संदर्भ और व्यापक अर्थ–ग्रहण किया गया है। आन्तरिक स्तरों के साथ वाह्य जीवन–यथार्थ के सूत्र परस्पर गुँथे हुए हैं। वैयक्तिक चेतना अपनी लपेट में व्यापक सामाजिक सन्दर्भों को समेट लाई है।''[34]

राजकमल चौधरी की कविता 'मुक्ति–प्रसंग' में चिंतन–प्रक्रिया के साथ रचना–प्रक्रिया के जुड़े होने की बात कही जाती है। ये दोनों आपस में इस तरह जुड़े हुए हैं कि इन्हें विश्लेषण का विषय बनाना आसान नहीं है। जिन्होंने इस विषय पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया है, डॉ. बलदेव वंशी उनमें से एक हैं। उनकी मान्यता है, ''संपूर्ण कविता एक लगातार तनावभरी–तरंगमयी मनःस्थिति में लिखी गई है। मृत्यु और मुक्ति की गहरी टकराहट से उत्पन्न द्वन्द्व–चेतना समूची कविता के मूल में विद्यमान रहकर रचना–प्रक्रिया को प्रभावित किए हुए है।''[35]

'मुक्ति–प्रसंग' में मुख्यरूप से 'उग्रतारा' का प्रतीकात्मक उपयोग किया गया है। यहाँ मिथकीय प्रयोग का बाहुल्य है। वामामार्गी तांत्रिक साधना–पद्धति से जुड़ी पारिभाषिक शब्दावलियों की भरमार है। इनके बिना कवि का काम नहीं चलता। तांत्रिक शब्दावलियों का प्रयोग 'मुक्ति–प्रसंग' की आवश्यकता बन गई है। इनके अभाव में कवि जो कुछ कहना चाहता था कह नहीं पाता। कविता की प्रतीकात्मकता और मिथकीय प्रयुक्तियों पर विचार प्रकट करते हुए डॉ. बलदेव वंशी ने जो कुछ कहा है वह सार्थक प्रतीत होता है। उनका कथन है, ''योगासन, उग्रतारा, सामुद्रिक स्वाद, दशमुख विध्वंस, कुंडलिनी, उपदंश, महादंश, कौलिक पूजागृह, शक्तिपीठ, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, काममुद्रा, आदिकन्या आदि पारस्परिक शब्दों में योगसाधना के अर्थ संदर्भ खुलते हैं। इन मिथकीय प्रयोगों के द्वारा राजकमल चौधरी एक मुक्तिकामी तांत्रिक अनुष्ठान की रचना भी करते हैं। मुक्ति का वामाचारी मार्ग ही उन्हें इष्ट है। इसलिए मदिरा, मांस, मैथुन की महा–मुद्राएँ प्रयुक्त हुई हैं। इसी तांत्रिक साधना में उग्रतारा का मिथकीय प्रयोग हुआ है।''[36]

निष्कर्ष

कविता के संघर्ष के कवि राजकमल चौधरी उन कवियों में से एक हैं जिन्होंने आम जनता की समस्याओं से जुड़कर अपनी कविता एवं कवि–कर्म को सफल और सार्थक सिद्ध किया। उनकी कविता की विशेषता यह है कि उनमें वैयक्तिक और सामाजिक अनुभूति समन्वित होकर सामने आई है। उनके जीवन और काव्य के बीच भी फाँक नहीं है। अभिव्यक्ति संबंधी विलक्षणता एवं आक्रामकता पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने की नितान्त आवश्यकता है। इस संदर्भ में धैर्य के साथ ही भावयित्री प्रतिभा की भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि सामाजिक अनुभूति एवं जीवनानुभूति के यथार्थता के समझ की। राजकमल चौधरी की कविता जनता के संघर्ष से असंपृक्त रहकर लिखी गई कविता न होकर जीवन–जगत् के संघर्ष में शामिल होकर लिखी गयी कविता है। वे काव्यात्मक संघर्ष के सशक्त एवं सार्थक कवि हैं।

राजकमल चौधरी का काव्यात्मक संघर्ष स्पष्ट दिखायी देता है। वे अपने जीवनव्यापी संघर्ष को काव्य के साथ अनुस्यूत करने में सफल रहे हैं। उनका संघर्ष बहुस्तरीय रहा है, बहुमुखी रहा है। उन्होंने इस संघर्ष के तनाव को विभिन्न स्तरों पर झेला, महसूस किया और अभिव्यक्त किया है। उनकी कविता की सार्थकता को इन्हीं संदर्भों में परखा जाना चाहिए।

सुझाव

राजकमल चौधरी के काव्य के साथ न्याय करने के लिए उनके कवि–सत्य की परख करना जरूरी है। इसके अभाव में किसी भी पूर्वाग्रह एवं हठधर्मिता को अपनाकर उनके काव्य का समुचित मूल्यांकन करना संभव नहीं है। अतः उनकी कविता को समझने के लिए उनके विविध स्तरीय अनुभवों एवं विशिष्ट अभिव्यक्ति शैली पर सम्यक् ढंग से विचार करने के लिए धैर्य, सहानुभूति एवं प्रतिभा की अपेक्षा है। उक्त गुणों की सापेक्षिक स्थिति को ध्यान में रखकर ही राजकमल चौधरी की कविता से संबंधित अभिमत पर विचार किया जाना चाहिए, अन्यथा त्रुटिपूर्ण निर्णय के शिकार होने का खतरा बना रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *साये में धूप : दुष्यन्त कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2006, पृ.सं.–08,*
2. *कविता का संघर्ष : कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण : 2016, पृ.सं.–96,*
3. *संसद से सड़क तक : सुदामा पाण्डेय धूमिल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, राजकमल पेपरबैक्स में पहला संस्करण : 2013, पृ.सं.–35,*
4. *समकालीन काव्य–यात्रा : नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2004, पृ.सं.–243,*
5. *भारतीय प्राणधारा का स्वाभाविक विकास : हिन्दी कविता : प्रो. राजमणि शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2006, पृ.सं.–123,*
6. *समकालीन काव्य–यात्रा : नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2004, पृ.सं.–243,*
7. *हिन्दी की साहित्यिक संस्कृति और भारतीय आधुनिकता : डॉ. राजकुमार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2015, पृ.सं.–34,*
8. *राजकमल चौधरी रचनावली : खण्ड–2 : सं. देवशंकर नवीन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2015, पृ.सं.–230,*
9. *समाज–विज्ञान विश्वकोश, खण्ड–2 : सं. अभय कुमार दुबे, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण : 2015, पृ.सं.–389,*
10. *राजकमल चौधरी रचनावली : खण्ड–2 : सं. देवशंकर नवीन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2015, पृ.सं.–249,*
11. *वही, पृ.सं.–249,*
12. *संसद से सड़क तक : सुदामा पाण्डेय धूमिल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, राजकमल पेपरबैक्स में पहला संस्करण : 2013, पृ.सं.–34,*
13. *समकालीन काव्य–यात्रा : नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2004, पृ.सं.–251,*
14. *वही, पृ.सं.–250–251,*
15. *दुस्समय में साहित्य : परंपरा का पुनर्मूल्यांकन : डॉ. शंभुनाथ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2002, पृ.सं.–161,*
16. *वही, पृ.सं.–161–162,*
17. *वही, पृ.सं.–162,*
18. *वही, पृ.सं.–162,*
19. *राजकमल चौधरी रचनावली : खण्ड–2 : सं. देवशंकर नवीन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2015, पृ.सं.–251,*
20. *समकालीन काव्य–यात्रा : नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2004, पृ.सं. –227–228,*
21. *संसद से सड़क तक : सुदामा पाण्डेय धूमिल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, राजकमल पेपरबैक्स में पहला संस्करण : 2013, पृ.सं.–34,*
22. *भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा : डॉ. मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2013, पृ.सं.–124,*
23. *राजकमल चौधरी रचनावली : खण्ड–2 : सं. देवशंकर नवीन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2015, पृ.सं.–259,*
24. *समकालीन हिन्दी कविता : अज्ञेय और मुक्तिबोध के संदर्भ में : डॉ. शशि शर्मा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण : 2008, पृ.सं.–237,*
25. *वही, पृ.सं.–237,*
26. *समसामयिकता और आधुनिक हिंदी कविता : डॉ. रघुवंश, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, संस्करण : 1993, पृ.सं.–70,*
27. *समय–समय पर : केदारनाथ अग्रवाल, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, संस्करण : 2010, पृ.सं.–172,*
28. *लम्बी कविताएँ : वैचारिक सरोकार : डॉ. बलदेव वंशी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2009, पृ. सं.–80–81,*
29. *आलोचना और रचना की उलझने : मुद्राराक्षस, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण : 2011, पृ. सं.–86,*
30. *आजकल : सं. सीमा ओझा, सितम्बर 2010, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ.सं.–07,*
31. *भारतीय प्राणधारा का स्वाभाविक विकास : हिन्दी कविता : प्रो. राजमणि शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,प्रथम संस्करण : 2006, पृ.सं.–161,*
32. *वही, पृ.सं.–160,*
33. *वही, पृ.सं.–123,*
34. *लम्बी कविताएँ : वैचारिक सरोकार : डॉ. बलदेव वंशी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2009, पृ. सं.–70,*
35. *वही, पृ.सं.–75,*
36. *वही, पृ.सं.–79,*